सांख्य का कारणता सिद्धांत - सत्यकार्यवाद

'Sankhya Theory of Causation'

सांख्य दर्शन में कार्य-कारण-सिद्धांत (Law of Causation) को 'सत्यकार्यवाद' कहा जाता है। यह सांख्य दर्शन की आधारशिला भी है। यहाँ पर प्रश्न यह है कि, क्या कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व अपने उपादान कारण में विद्यमान रहता है? इस प्रश्न के दो उत्तर दिये गये हैं - (i) भावात्मक, (ii) निषेधात्मक।

(i) भावात्मक → सांख्य, वेदांत और शून्यवादी एवं विज्ञानवादी बौद्ध दर्शन सत्यकार्यवाद के समर्थक हैं।

(ii) निषेधात्मक → न्याय-वैशेषिक, हीनयानी तथा कुछ मीमांसक आदि असत्यकार्यवादी हैं। इनके अनुसार कार्य का आरम्भ नए सिरे से होता है क्योंकि यह अपनी उत्पत्ति के पूर्व यह अपने उपादान कारण में स्थित नहीं रहता है। इसलिए इसे 'आरम्भवाद' कहते हैं। सांख्य-दर्शन असत्यकार्यवाद का खण्डन करके सत्यकार्यवाद की स्थापना करता है।

सत्यकार्यवाद :→ 'सत्कार्यवाद' का मानना है कि, कार्य उत्पत्ति से पूर्व कारण में छिपा रहता है। इस तरह कार्य उत्पत्ति के पूर्व भी सत् है। कारण वस्तुतः कार्य की अव्यक्त अवस्था है और कार्य कारण की व्यक्तावस्था है।

'सत्कार्य' पद दो शब्दों से मिलकर बना है - सत् + कार्य। 'सत्' का अर्थ है - जो विद्यमान ('अस्तीति सत्') हो तथा 'कार्य' से तात्पर्य है - महदादि (महत्, अहंकार, मन सहित एकादश इन्द्रियाँ शब्दादि पञ्चतन्मात्र, पृथ्व्यादि पञ्च महाभूत) तेइस (23) कार्य, जो प्रकृति के स्वरूप तथा विरूप हैं। इस प्रकार 'सत्यकार्य' का अर्थ है - 'महदादि तेइस कार्यों की विद्यमानता'। ये त्रिकालाबाधित हैं।

प्रसिद्ध सांख्य दार्शनिक ईश्वरकृष्ण ने 'सांख्यकारिका' में इसके समर्थन में पाँच युक्तियाँ दी हैं —

"असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्यशक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्" ॥ (सांख्यकारिका, 9)

इस श्लोक में पाँच (5) युक्तियाँ हैं —

(i) असदकरणात् (ii) उपादानग्रहणात्
(iii) सर्वसम्भवाभावात् (iv) शक्तस्यशक्यकरणात् (v) कारणभावात् ।

(1) असत् से सत् की उत्पत्ति असंभव → कार्य का पहले से अर्थात् कारण में सत् होना आवश्यक है, क्योंकि असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती । जैसे - आकाश-कुसुम की उत्पत्ति इसलिए संभव नहीं है, क्योंकि वह असत् है । इसे ही 'असत्कारणात्' कहा गया है।

(2) उपादान कारण की आवश्यकता (उपादानग्रहणात्) :→
प्रत्येक कार्य में विशेष उपादान कारण जैसे (जैसे, घड़े में मिट्टी) आवश्यकता होता है । इससे भी सिद्ध होता है कि कार्य अपने उपादान कारण से अभिन्न है ।

(3) सभी कार्य सभी कारणों से अनुत्पन्न (सर्वसम्भवाभावात्) :→
कार्य आवश्यक रूप से उपादान कारण में ही रहता है । यदि न हो तो सभी कार्य सभी कारणों से उत्पन्न हो जायेंगे, किंतु व्यवहार में पाते हैं कि विशेष कार्य, किसी विशेष कारणों से ही उत्पन्न होते हैं । जैसे - गेहूँ का पौधा, गेहूँ के बीज से ही निकलता है, जौ के बीज से नहीं । इसे ही 'सर्वसम्भवाभावात्' कहा गया है।

(4) सामर्थ्य होने पर ही उत्पत्ति (शक्तस्यशक्यकरणात्) :→
सामर्थ्य होने पर ही कारण-कार्य को उत्पन्न करते देखा जाता है । जैसे - तिल में तेल उत्पन्न करने की शक्ति होती है तभी तेल उत्पन्न होता है अन्यथा नहीं । इससे सिद्ध होता है कि (तेल) कार्य, कारण में पूर्व से ही विद्यमान रहता है ।

(5). कार्य और कारण में अभेद (कारणभावात्) :→

वस्तुतः कार्य एवं कारण में अभेद होता है अर्थात् दोनों में एकता होती है। कारण एवं कार्य एक ही वस्तु की दो अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था अव्यक्त है जबकि दूसरी व्यक्त अवस्था। यही कारण है कि इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। जैसे- हम घड़े को मिट्टी से, कपड़े को तन्तु से, स्वर्णाभूषण को स्वर्ण से पृथक नहीं कर सकते।

सत्यकार्यवाद के भेद :→ इसके दो भेद होते हैं –

(i). परिणामवाद → प्रकृति परिणामवाद (सांख्य मत)
→ ब्रह्म परिणामवाद (रामानुज, वल्लभ आदि वेदांती।)

(ii). विवर्तवाद
- शून्यताविवर्तवाद (शून्यवादी मत)
- विज्ञानविवर्तवाद (मूल विज्ञानवादीमत)
- ब्रह्मविवर्तवाद (शांकर मत)

परिणामवाद :→ परिवर्तन को वास्तविक मानने वाले 'परिणामवादी' कहलाते हैं क्योंकि ये परिणाम को सत्य मानते हैं। इनके अनुसार कार्य कारण का वास्तविक परिणाम है। जैसे मिट्टी घट के रूप में और तिल तेल के रूप में परिणत हो जाती है। इसके विपरीत परिवर्तन को अवास्तविक मानने वाले 'विवर्तवादी' कहलाते हैं। परिणामवादियों में सांख्य, रामानुज तथा वल्लभ आते हैं।

विवर्तवाद :→ इसके अनुसार जगत् मूल कारण का परिणाम न होकर उसका विवर्त है। विवर्त का अर्थ है - आभास या मिथ्या। अर्थात् कार्य सत्य नहीं है. विवर्त वास्तव में कारण कार्यरूप में परिणत नहीं होता जैसा कि परिणामवाद कहता है। यहाँ केवल परिवर्तन का अर्थात् कार्य का केवल आभास होता है। विवर्तवादियों में हैं – शून्यवाद, मूलविज्ञानवादी और शांकर का अद्वैत दर्शन।

→ परिणामवाद के भेद :→ इसमें भी मतभेद वश दो भेद हो गये — प्रकृति परिणामवाद और ब्रह्म परिणामवाद।

(i) प्रकृति परिणामवाद → यह सांख्य दर्शन का जगत् के निर्माण के सम्बन्ध में स्वीकृत सिद्धांत है। इसके अनुसार प्रकृति ही जगत् के रूप में परिणत होती है। यहाँ प्रकृति को कारण माना गया है

(ii) ब्रह्मपरिणामवाद → यह रामानुज, बल्लभ आदि वेदान्तियों द्वारा स्वीकृत सिद्धांत है। इसके अनुसार ब्रह्म स्वयं जगत रूप में परिणत होता है। जैसे- दूध दही में परिणत होता है। इस तरह इस सिद्धांत के अनुसार जगत् ब्रह्म का वास्तविक विकार है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कारणतावाद को निम्न तालिका द्वारा संक्षिप्त रूप से समझ सकते हैं —